ISSN 2395-051X

निराला की प्रेम-कविताओं का अध्ययन

डॉ. प्रज्ञा पाण्डेय
अतिथि विद्वान - हिन्दी
शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

निराला का काव्य बहुआयामी और व्यापक है। इनके काव्य में क्लासिकी रोमांटिक तथा आधुनिक तत्व एक साथ दिखाई देते हैं। इनके काव्य में एक ओर राग है तो दूसरी ओर विराग भी है, 'अभी न होगा मेरा अंत' कहने वाला कवि मृत्यु की विभीषिका से भी आक्रांत है। एक ओर क्रांति है तो दूसरी ओर प्रकृति-प्रेम और नारी-सौन्दर्य के चित्र भी हैं।

निराला के प्रेम गीत आत्म-साक्षात्कार की सघन भाव-भूमि से शुरू होते है। उनके प्रेमगीतों में एक सहज एकतानता हर जगह विद्यमान है। यानी कि उनके ये गीत खण्ड-खण्ड, एक दूसरे से अलग-अलग अनुभूतियाँ नहीं हैं, बल्कि एक ही संघटित अनुभूति का एक अनवरत प्रवाह है, जो प्रत्येक गीत में नये-नये बिम्बों के माध्यम से व्यक्त हुआ है। प्रेम उनके लिए महान तत्व है, जो उन्हें भार मुक्त करता है। उन्हें पूर्ण बनाता है। पूर्णता की अनुभूति ही उनके प्रेम-गीतों में बार-बार अभिव्यक्त हुई है। प्रेम के इसी प्रभावशाली रूप का उद्‌घाटन 'अनामिका' की 'प्रेयसी' नामक पहली ही कविता से शुरू होता है। 'अष्टम ऐडवर्ड' में इसी प्रेम का बखान और उसकी सर्वान्त महत्ता की स्थापना निराला ने की है। 'परिमल' के आरंभ में ही निराला के 'मौन' शीर्षक गीत में कवि अपने सहयात्री को संबोधित करता हुआ कहता है -

''बैठ लें कुछ देर / आओ, एक पथ के पथिक से/प्रिय अन्त और
अनन्त के/तम-गहन-जीवन घेर।/मौन मधु हो जाय.भाषा मूकता की
आड़ में मन सहजता की बाढ़ में / जल विन्दु - सा बह जाय।''[1]

'गीतिका' के निम्न आत्मपरक गीत में निराला का संपूर्ण व्यक्तिगत जीवन है - उनके परिवार में घटनेवाली त्रसदी, साहित्य जगत् में मिलने वाली उपेक्षा ने उन्हें झकझोर दिया, वे स्नेह के भूखे थे, वे ईश्वर से करूणाकर सम्बोधन करके पूँछते हैं कि क्या कभी स्नेह मिलेगा?-

''मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा?/स्तब्ध, दग्ध मेरे मरू
का तरू/क्या करुणाकर खिल न सकेगा?/जग के दूषित
बीज नष्ट कर,/पुलक - स्पंद भर, खिला स्पष्टतर,/कृपा
- समीरण बहने पर, क्या/कठिन हृदय यह हिल न सकेगा?'

नि. रचनावली - 1, पृ, 222

निम्न आत्मपरक गीत कुछ भिन्न प्रकार का है। इस गीत का संबंध निराला की दिवंगता पत्नी से है। निराला की पत्नी उनकी स्मृति में आती है, तो वे उनका सौंदर्य देखकर पूर्ण तृप्ति का अनुभव करते हैं। इस गीत में उन्होंने उनके रूप और शील दोनों का वर्णन किया है -

"देख दिव्य छवि लोचन हारे। / रूप अतंद्र, चंद्रमुख,
श्रम रूचि, / पलक तरल तम, मृग-दृग-तारे।/द्वेष-दंभ
-दुख पर जय पाकर / खिले सकल नव अंग मनोहर,/
चितवन संसृति की सरिता तर/खड़ी स्नेह के सिंधु-किनारे।"

नि. रचनावली- 1, पृ. 260-261

'अनामिका' के 'मरण दृश्य' नामक शीर्षक आत्मपरक गीत में निराला अपनी दिवंगता पत्नी से संवाद करते हैं, कहते हैं कि अब तक जो नहीं कहा, वह कह डालो -

कहा जो न, कहो!/नित्य - नूतन, प्रण, अपने/गान रच-रच
दो!...../सकल साभिप्राय;/समझ पाया था नहीं मैं,/थी तभी
यह हाय!/दिए थे जो स्नेह - चुंबन,/आज प्याले गरल के घन;/
कह रही हो हँस - पियो, प्रिय,/पियो, प्रिय, निरूपाय!/मुक्ति हूँ
मैं, मृत्यु में/आई हुई, न डरो!"[2]

निराला प्रेम को सारी सृष्टि में रमा हुआ देखते हैं। निराला अपने प्रिय से कह रहे हैं कि आओ, हम उन लहरों का जो विनाशकारी है उनका निरन्तर आघात सहें और जिसको जो कहना है उनके सम्बन्ध मे सो कहे, इसकी चिन्ता उन्हें नहीं है -

"जैसे हम हैं वैसे ही रहें / लिये हाथ एक दूसरे का / अतिशय
सुख के सागर में बहें। / मुंदे पलक, केवल देखें उर/में सुने सब
कथा परिमल - सुर में / जो चाहें, कहें वे, कहें।/वहाँ एक दृष्टि से
अशेष प्रणय/देख रहा है जग को निर्भय/दोनों उसकी दृढ़, लहरें सहें।"

नि. रचनावली - 1, पृ. 369

"प्रेम को व्यक्तित्व की पूर्णता का पर्याय मानने के पीछे निराला के निजी जीवन के दुखान्त ही हैं। अपनी आत्म - जर्जरता के इन्हीं क्षणों को भरने के लिए वे उसका आवाहन करते हैं। अपनी प्रतिभा - तेजस्विता को समृद्ध करने वाले स्रोत की तरह उसकी ओर उन्मुख होते हैं। इसलिए आह्लाद से लगातार आत्म मुक्ति तक की इस अन्तर्यात्रा के संगीत के पीछे अपने निजी दुखान्तों की तीखी अनुभूति उनके गीतों में हर जगह परिव्याप्त है।"[3] दुखान्त की यही तीव्र अनुभूति उनके प्रेम - गीतों की रचना - पृष्ठभूमि है। 'ऊसर - ऊसर' की भूमिका पर रस का उर्वर स्रोत कवि मांगता है -

"हँसो अधर-धरी हंसी/बसो प्राण-प्राण बसी।/
करूणा के रस उर्वर/कर दो ऊसर-ऊसर,/
दुख की संध्या घूसर/हीरक - तारकों कसी।

नि. रचनावली - 2, पृ, 386

निराला के काव्य का एक बृहत् अंश श्रंगार और सौन्दर्य की भूमि से जुड़ा हुआ है। प्रारंभिक काव्य (1935 ई. के पूर्व) में प्रेम और श्रंगार भावना की तीव्रता अधिक है। यह तीव्रता 'परिमल', 'अनामिका', 'गीतिका' नामक काव्य में देखी जा सकती है। डां. रामविलास शर्मा ने 'परिमल' की कविताओं की समीक्षा

ISSN 2395-051X

करते हुए निराला को सौन्दर्य और प्रेम का कवि रहा है।[4] 'परिमल' का निम्न गीत एक ऋतु गीत प्रतीत होता है लेकिन अंतिम बंद से पता चलता है कि यह श्रृंगारपरक गीत है -

"अलि, घिर आए घन पावस के।/लख ये काले-काले
बादल,/नील सिंधु में खुले कमल-दल,/हरित ज्योति,
चपला अति चंचल,/सौरभ के, रस के -/अलि, घिर
आए घन पावस के।/ .....छोड़ गए गृह जबसे
प्रियतम/बीते अपलक दृश्य मनोरम,/क्या मैं हूँ ऐसी
ही अक्षम,/क्यों न रहे बस के -/अलि, घिर आए
घन पावस के।"

नि. रचनावली - 1, पृ, 199

"निराला की एक खूबी है कि उनके नायक - नायिका हमेशा पति - पत्नी होते हैं। इस तरह उन्होंने सर्वत्र दांपत्य - रति या गार्हस्थ्य - प्रेम का वर्णन किया है।"[5] निम्न गीत में सम्भोग का अत्यन्त सघन और सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत किया है -

स्पर्श से लाज लगी;/अलक - पलक में छिपी छलक/
उर से नव - राग - जगी।/चुबंन - चकित चतुर्दिक
चंचल / हेर, फेर मुख, कर बहु सुख - छल,/कभी
हास, फिर त्रस, साँस - बल/उर - सरिता उमगी।

नि. रचनावली - 1, पृ, 11

'होली लिखने की परंपरा हिंदी में मध्यकाल से रही है आधुनिक काल में भारतेंदु प्रेमघन और प्रतापनारायण ने राजनीतिक और सामाजिक होलियाँ लिखी थीं। बाद में उसी परंपरा में सत्यनारायण 'कविरत्न' ने एक भक्ति पूर्ण होली लिखी और मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' के नवम सर्ग में एक श्रृंगारिक होली, जिसमें वासंती - प्रकृति का भी सुंदर श्रृंगारिक वर्णन है। इसी परंपरा में शुद्ध लोकधुन में रचित निराला की होली को भी समझना चाहिए, तो इसी शीर्षक से सर्वप्रथम पाक्षिक 'जागरण' के 22 मार्च, 1932 के अंक में प्रकाशित हुई थी बाद में 'गीतिका' में संकलित हुई।'[6] निराला चूँकि ग्रामीण परिवेश से सम्बद्ध थे अतः उनका लोक संस्कृति से जुड़ाव होना स्वाभाविक है। होली की धुन में रचित इस गीत में वर्णित होली प्रचलित रंग - अबीर - वाली होली नहीं, बल्कि पूर्णतः श्रंगारिक होली हैं लेकिन टेक की पंक्ति से होली होने का भ्रम होता है -

सुबह नायिका की आँखों के डोरे लाल है, जैसे उनमें पूरा गुलाल भर गया हो। यह स्थिति रात्रि जागरण के कारण हुई है क्योंकि उसने अपने प्रिय के साथ प्रेम की होली जो खेली है -

"नयनों के डोरे लाल गुलाल - भरे, खेली होली!
जागी रात सेज प्रिय पति - सँग रति सनेह - रँग
घोली दीपित दीप - प्रकाश, कंज - छवि मंजु - मंजु
हंस खोली मली मुख चुंबन - रोली।...../बीती रात

सुखद बातों में प्रात पवन प्रिय डोली, उठी सँभाल बाल,
मुख लट, पट, दीप बुझा हंस बोली,/रही यह एक ठिठोली।''

वही पृ. २...

'मौन रही हार' शीर्षक गीत में एक युवती सज-धजकर अपने प्रिय से मिलने के लिए जाती है और उसके मार्ग में लज्जा बाधा आती है युवती मन में हारकर चुप रह जाती है। प्रिय पथ पर चलने वाली नायिका के नूपुरों की ध्वनि में प्रिय का स्वर न सुनकर लोग उसे श्रंगार कहकर बदनाम करते हैं -

''कण - कण कर कंकण, मृदु/किणू-किणू रव किंकिणी,
रणन-रणन नूपुर, उर लाज; / लौट रंकिणी; और मुखर
पायल स्वर करें बार - बार प्रिय - पथ पर चलती, सब
कहते श्रंगार! / 'शब्द सुना हो, तो अब लौट कहाँ जाऊँ?/
उन चरणों को छोड़ और / शरण कहाँ पाऊँ?'-बजे सजे उर
के इस सुर के सब तार-प्रिय-पथ पर चलती, सब कहते श्रंगार!''

नि. रचनावली-1, पृ. 254

निराला ने गाँव की पृष्ठभूमि में लिखे श्रंगार परक गीत में एक ऐसी युवती का चित्र खींचा है जो नदी के घाट पर नहाने जाती थी और एक सौन्दर्यमयी मुस्कान से सब कुछ कहती थी :-

बांधो न नाव इस ठाँव, बंधु!/पूछेगा सारा गाँव, बंधु!/
यह घाट वही जिस पर हँसकर,/वह कभी नहाती थी
धँसकर,/आँखे रह जाती थीं फँसकर,/कँपते थे दोनों पाँव,
बंधु!/वह हँसी बहुत कुछ कहती थी,/फिर भी अपने में रहती
थी,/सबकी सुनती थी, सहती थी,/देती थी सबसे दाँव, बंधु!'

ग्रामीण पृष्ठभूमि का गीत 'प्रिय के हाथ जागी, ऐसी मैं सो गई अभागी' - में एक युवती अपने पति के स्पर्श से जागती है प्रथम बंद में मुख्य रूप से प्रकृति-लोक का वर्णन है और द्वितीय बंद में मनुष्य - लोक का। एक-एक दृश्य के वर्णन के साथ युवती की आकुलता यह सोचकर बढ़ती जाती है कि वह देर से जगी। इसी में इस गीत का सौन्दर्य है -

''हरसिंगार के फूल झर गए,/कनक रश्मि से द्वार भर गए,
चिड़ियों के कल कंठ मर गए,/भस्म रमाकर चला विरागी।
शिशु-गण अपने पाठ हुए रत,/गृही निपुण गृह के कर्मों नत,
गृहिणी स्नान - ध्यान को उद्यत,/भिक्षुक ने घर भिक्षा माँगी।''

वही पृ. 383

निराला ने प्रेम के वियोग पक्ष का वर्णन कम ही किया है क्योंकि उनका मन और रचनात्मक जीवन इसे अपने अनुकूल नहीं पाता। निराला प्रेम को आत्म - जर्जर, सन्तप्त या रिक्त कर देने वाला तत्व न मान कर व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करने वाला तत्व मानते हैं। प्रेम निराला के लिए सांसारिक दुख-बोध, भय - बाधा आदि को समाप्त करके निष्काम आत्म मुक्ति का मार्ग है। इसीलिए जहां 'स्नेह - निर्झर' के बह जाने और रेत

की तरह शरीर के टूट जाने का अवसाद व्यक्त हुआ है, उसे अन्त में ले जा कर निराला पूर्णकाम की मनः स्थिति में घुला देते हैं। दैन्य वहां नहीं घेरता है, बल्कि उसकी जगह अपनी उपलब्धि, अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण कर पाने का उच्छल गर्व अधिक व्यक्त हुआ है। ढहे हुए जीवन के समृद्ध ऐश्वर्य की अनुभूति उन्हें निरामय और पूर्ण बनाती हैं। इसके अतिरिक्त भी, जहाँ प्रेम में आत्म - सन्ताप की कठिन अपरिहार्य अनुभूति उन्हें घेरती हैं, वहां भी वे विरह-जर्जर नहीं दिखाई देते बल्कि एक प्रपत्ति भाव की भूमिका पर उतर आते हैं।

संदर्भ

1. नंदकिशोर नवल (संपा.) : निराला रचनावली पृ. 170
2. नंदकिशोर नवल (संपा.) : निराला रचनावली पृ. 359 - 360
3. दूधनाथसिंह : निराला : आत्महन्ता आस्था, पृ. 33
4. डॉ. रामविलास शर्मा : निराला पृ. 42
5. नंदकिशोर नवल : निराला कृति से साक्षात्कार (द्वितीय खंड) पृ. 36
6. वही पृ. 39
7. नंदकिशोर नवल (संपा.) : निराला रचनावली पृ. 364-365